ज्ञान दर्पण

द्वितीय भाग

लेखक एवं सम्पादक
डा. शीतल चन्द्र जैन
एम. ए. पी. एच. डी. जैन दर्शनाचार्य
प्राचार्य,
श्री दि. जैन. आ. सं. महाविद्यालय, जयपुर

वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट प्रकाशन

* सम्पादक एवं नियामक:
डा. दरबारीलाल कोठिया

* ट्रस्ट संस्थापक:
पं. जुगलकिशोर मुख्तार, युगवीर

ज्ञान-दर्पण (द्वितीय भाग)

लेखक एवं सम्पादक:
डा. शीतल चन्द्र जैन

प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान:
डा. शीतल चन्द्र जैन, मंत्री
वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट
1314, अजब घर का रास्ता
किशनपोल बाजार, जयपुर
मूल्य- 5/-
संस्करण- द्वितीय
सन् 1995

मुद्रक:- मूनलाइट प्रिन्टर्स, जयपुर - 3

लेखकीय

आज इस वैज्ञानिक युग में जहाँ बालक अपनी दैनिकचर्या दूरदर्शन से प्रारम्भ करता है और रात्रि में दूरदर्शन से ही समाप्त करता है। ऐसे समय में कोमल बालक मन में धर्म के संस्कार कैसे आरोपित हो, यह अहम् प्रश्न है। बालक तो समाजरूपी उद्यान का अर्धविकसित पुष्प है। जिसे सही ढंग से पूर्ण विकसित किया जाय तो उसकी सुगन्धि परिवार/ समाज देश के लिये प्रमुदित करने वाली होगी।

बचपन में खेल ही जिन्दगी लगती है। यदि बालक के माता-पिता ने ध्यान नही दिया तो बालक की जिन्दगी ही खेल बन सकती है। वस्तुतः इस भौतिक विकास की चकाचौंध ने बच्चों को ही नही अपितु बुजुर्गों तक को दिग्भ्रमित कर रखा है। अच्छे संस्कारो की बात कहानी बनकर रह गयी है और सदाचरण के दर्शन तो दूरदर्शन / प्रदर्शन मात्र में ही रह गये हैं।

अतः स्वाभाविक है कि कोमल बालकमनपर जिस कोटि के संस्कार दिये जायेगें वैसे ही संस्कार जिन्दगी के लिए अमिट छाप बन जायेगें। इसलिए बचपन से ही अच्छे संस्कारों से संस्कारित करने के लिये सरल-सुबोध शैली में तदनुरूप पुस्तकों की नितांन्त आवश्यकता थी। इस दृष्टि को ध्यान में रखकर आज की शैक्षणिक पद्धति के अनुरूप ज्ञान दर्पण के चार भाग तैयार किये हैं। ये कितने उपयोगी हैं। यह तो पाठक ही अनुभव कर सकेगें। द्वितीय भाग का पूर्व में एक संस्करण निकल चुका है। द्वितीय संस्करण पाठको के हाथ में है। ट्रस्ट के अध्यक्ष आदणीय डॉ. दरबारी लाल जी कोठिया ''न्यायाचार्य'' के प्रति हम अत्यन्त आभारी है जिनके, आशीर्वाद से यह कार्य सम्भव हो सका है। प्रेस कापी तैयार करने में श्री प्रधुम्न शास्त्री ने सहयोग किया। एतदर्थ शुभाशीः।

भ. आदिनाथ जयन्ति

दिनाक : 24 3 95

आपका

डॉ. शीतल चन्द जैन

प्राचार्य

श्री दि. जैन आ. सं. महा.

मनिहारो का रास्ता जयपुर

प्रकाशकीय

जैन साहित्य और इतिहास के मर्मज्ञ एवं अनुसंधाता सरस्वतीपुत्र पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार 'युगवीर' ने अपनी साहित्य इतिहास सम्बन्धी अनुसंन्धान प्रवृत्तियों को मूर्त्तरूप देने हेतु अपने निवास सरसावा (सहारनपुर) में वीर सेवामंदिर ट्रस्ट की स्थापना की थी। यह ट्रस्ट ग्रंथ प्रकाशन और साहित्यानुसंधान का कार्य कर रहा है। इस ट्रस्ट के समर्पित वयोवृद्ध पूर्वमानदमंत्री एवं वर्तमान में अध्यक्ष डॉ. दरबारीलालजी कोठिया बीना के अथक परिश्रम एवं लगन से अभी तक ट्रस्ट से 41 महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का प्रकाशन हो चुका है। आदरणीय कोठियाजी के ही मार्गदर्शन में ट्रस्ट का संपूर्ण कार्य चल रहा है। अत: उनके प्रति हम हृदय से कृतज्ञता व्यक्त करते हैं और कामना करते हैं कि वे दीर्घायु होकर अपनी सेवाओं से समाज को चिरकाल तक लाभान्वित करते रहें। ट्रस्ट के संयुक्तमंत्री ला. सुरेशचन्द्र जैन (सरसावा) का एवं राजीव संगल (एटा) तथा समस्त सदस्यों का उल्लेखनीय सहयोग है। एतदर्थ वे धन्यवादार्ह हैं।

प्रस्तुत लघुकृति बच्चों को बचपन से ही अच्छे संस्कारों से संस्कारित करने में अत्यंत उपयोगी होगी। इस भावना से ट्रस्ट का बालोपयोगीसाहित्य प्रकाशन के प्रति यह प्रथम प्रयास है। अभी इस दृष्टि से ज्ञान दर्पण-चार भाग प्रकाशित करने की योजना है, जिसमें यह द्वितीय भाग पाठकों के हाथ में प्रस्तुत है। इस भाग का एक संस्करण पूर्व में पार्श्वनाथ महिला मण्डल , जयपुर की ओर से प्रकाशित हुआ था , अत: उनके हम आभारी हैं। द्वितीय संस्करण ट्रस्ट की ओर से प्रकाशित हो रहा है। आशा है बाल वर्ग को एवं तत्त्व ज्ञान से अनभिज्ञ प्रत्येक मानव को विशेष उपयोगी होगें।

जैनं जयतु शासनम्

आपका

डॉ. शीतल चन्द जैन

मानदमंत्री

वीर सेवा मंदिर ट्रस्ट

संकल्प

सन्मार्ग के पथिक बन, हमको दिखाना चलके।
जिनधर्म है हमारा, धारेंगे सबसे बढ़के।।
कुरीतियों को तजकर, भवकूप से बचेंगे,
जिनधर्म ध्वज को लेकर, हम शान से बढ़ेंगे।
दो माँ जिनवाणी माता, अमृत जु रस पियेंगे,
गुरूवर की शरण लेकर, सन्मार्ग पर चलेंगे ॥1 ॥

मुनियों को दान देने, हरदम खड़े रहेंगे,
माँ जिनवाणी की सेवा, हम ज्ञान से करेंगे।
जिनधर्म हो जगत में, ऐसा यतन करेंगे,
मुनि शास्त्र जिन की रक्षा, हम जान से करेंगे ॥2 ॥

अफगान रूस आदि, जितने भी देशवासी,
रखि प्रेम भाव सब पर देवेंगे धर्म राशि।
पतितों का दु:ख हरने, प्रतिफल खड़े रहेंगे,
हिंसा का न हो तांडव, ऐसा यतन करेंगे ॥3 ॥

श्री निर्ग्रन्थ गुरूवर, यह सीख देते हमको,
विज्ञान से भरा यह, प्राचीन धर्म जग में।
व्रत शील को ग्रहण कर, शिवमार्ग पर चलेंगे,
त्रिगुप्ति धार करके, मुक्ति रमा वरेंगे ॥4 ॥

अनुक्रमणिका

पाठ 1

देव स्तुतिः-

वीतराग सर्वज्ञ हितंकर भविजन की अब पूरो आस।
ज्ञान भानु का उदय करो, मम मिथ्यातम का होय विनाश॥
जीवों की हम करुणा पालें, झूठ वचन नहीं कहें कदा।
परधन कबहुं न हरहूँ स्वामी, ब्रह्मचर्य व्रत रखें सदा॥
तृष्णा लोभ बढ़े न हमारा तोष सुधा नित पिया करे।
श्री जिन धर्म हमारा प्यारा, तिस की सेवा किया करे।।
दूर भगावें बुरी रीतियाँ सुखद रीति का करें प्रचार।
मेल मिलाप बढ़ावें हम सब धर्मोन्नति का करें प्रसार॥
सुख दु:ख में हम समता धारे, रहे अचल जिमि सदा अटल।
न्याय मार्ग को लेश न त्यागें बृद्धि करें निज आतमबल।।
अष्ट कर्म जो दु:ख हेतु हैं, तिनके क्षय का करे उपाय।
नाम आपका जपें निरन्तर विघ्न शोक सबही टल जाय॥
आतम शुद्ध हमारा होवे पाप मैल नहीं चढ़े कदा।
विद्या की हो उन्नति हममें, धर्म ज्ञान हूँ बढ़े सदा॥
हाथ जोड़कर शीश नवावें तुमको भविजन खड़े खड़े।
यह सब पूरो आश हमारी, चरण शरण में आन पड़े॥

देव स्तुति का अर्थ -

अपनी भावना सहित भक्ति में तल्लीन कोई भव्यजीव वीतराग सर्वज्ञ और हितोपदेशी ऐसे तीनों गुणों से युक्त सच्चे देव की स्तुति करता हुआ कहता है कि हे भगवन! मिथ्यात्व रूपी अन्धकार को नष्ट करके सम्यग्ज्ञान रुपी सूर्य का प्रकाश कीजिए।

वही भव्य आगे कहता है कि मैं जीवों की रक्षा करूं, कभी झूठ नहीं बोलूं, चोरी नहीं करूं, ब्रह्मचर्य से रहूं, कभी तृष्णा नहीं करूं हमेशा संतोष धारण करूं, और हमारा जो धर्म है उसकी ही सेवा मैं निरन्तर करता रहूं।

हम धर्म के नाम पर फैलने वाली कुरीतियों और सामाजिक कुरीतियों को दूर करके धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में सही परम्पराओं का निर्माण करें तथा परस्पर में धर्म-प्रेम रखें।

हम सुख में प्रसन्न होकर फूल न जावें और दु:ख को देख कर घबड़ा न जावें दोनों ही दशाओं में धैर्य से काम लेकर समताभाव रखें तथा न्याय-मार्ग पर चलते हुए निरन्तर आत्म-शक्ति में वृद्धि करते रहें।

ज्ञानावरणादि आठों ही कर्म दु:ख देने वाले हैं इस लिए इनके नाश करने का उपाय करते रहें और आपका स्मरण सदा रखें जिससे सन्मार्ग में कोई विघ्न बाधायें न आयें।

हे भगवन हम सिर्फ ये चाहते हैं कि हमारी आत्मा पवित्र हो जाय उस पर हिंसादि पाप रूपी मैल न लगें और हमारे लौकिक ज्ञान की उन्नति के साथ ही धार्मिक ज्ञान निरन्तर बढ़ता रहे।

हम सभी भव्य जीव खड़े हुए हाथ जोड़ कर आपको नमस्कार कर रहें हैं, हम तो आपके चरणों की शरण में आ गये हैं, हमारी भावना अवश्य ही पूर्ण हो।

अभ्यास-प्रश्न

1. यह स्तुति किसकी है? सच्चा देव किसे कहते हैं?
2. हमें सुख और दु:ख में क्या करना चाहिये?
3. हमें दु:ख देने वाले कौन हैं?
4. हम भगवान से क्या चाहते हैं?
5. उक्त प्रार्थना का आशय अपने शब्दो में लिखिए?
6. निम्न पंक्तियों का अर्थ लिखिये?

"जीवों की हम करूणा पाले, झूठ वचन नहीं कहे कदा।
परधन कबहुं न हर हूँ स्वामी, ब्रह्मचर्य व्रत रखें सदा॥"
अष्ट कर्म जो दु:ख हेतु हैं, तिनके क्षय का करें उपाय।
नाम आपका जपें निरन्तर, विघ्न शोक सबही टल जाय॥

पाठ 2

देव -शास्त्र-गुरू

देव

जो वीतरागी सर्वज्ञ और हितोपदेशी होता है वह सच्चा देव कहलाता है। अरिहन्त, तीर्थकर जिनेन्द्र, परमेष्ठी, परमात्मा और परमेश्वर आदि देव के नामान्तर हैं।

वीतराग का लक्षण

जो किसी वस्तु, प्राणी से राग (प्रेम) तथा द्वेष (वैर) नहीं करता सबको सम (बाराबर) देखता है तथा जिसमें अठारह दोष नहीं होते हैं उसे वीतराग कहते हैं।

जन्म, बुढ़ापा, प्यास, भूख, आश्चर्य, दु:ख, खेद, रोग, शोक, घमण्ड, मोह, भय, नींद, चिन्ता, पसीना, राग, द्वेष और मरण ये 18 दोष कहलाते हैं।

सर्वज्ञ का लक्षण

जो कुछ पहले हो चुका है, अब हो रहा है और जो कुछ आगे होयेगा, उन सबको हर समय प्रत्यक्ष जानता है वह सर्वज्ञ कहलाता है। संसार में ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं जिसे सर्वज्ञ नहीं जानता हो।

हितोपदेशी का लक्षण

जो सब जीवों (प्राणियों) को हित (संसार से पार होने) का उपदेश देता है उसे हितोपदेशी कहते हैं।

शास्त्र का लक्षण

जो सच्चे देव का कहा हुआ होता है, जिसमें किसी प्रकार का विरोध नहीं होता, जो खोटे मार्ग का नाश करता है और जिसके पढ़ने, सुनाने से जीवों का कल्याण होता है वह शास्त्र कहलाता है।

शास्त्र के नामान्तर

जिनागम, जिनवाणी, जैनशासन, वीरशासन, भगवद् वाणी और सरस्वती आदि सच्चे शास्त्र के नाम हैं।

गुरू का लक्षण

जो इन्द्रियों के विषयों की चाह नहीं रखता, आरम्भ नहीं करता, परिग्रह नहीं रखता, जो ज्ञान, ध्यान व तप में लीन तथा पापों से दूर रहता है उसे सच्चा गुरू कहते हैं।

गुरू के नामान्तर

ऋषि, यति, मुनि, तपस्वी, योगी, साधु और दिगम्बर आदि गुरू के नाम हैं।

अपने शिक्षक को विद्यागुरू कहा जाता है और साधु, मुनि को गुरू कहा जाता है।

शिक्षा

इस प्रकार सच्चे देव, शास्त्र, गुरू का स्वरुप जानकार सदा ही उनकी भक्ति, पूजा और सेवा करनी चाहिए किन्तु रागी, द्वेषी, मिथ्यादेवों व साधुओं को कभी भी नहीं पूजना चाहिये। अनाचार, शिथिलता तथा विषयकषाय बढ़ाने वाले मिथ्या शास्त्र भी नहीं पढ़ने चाहिये।

प्रश्नावली

1 देव, गुरू और शास्त्र का लक्षण लिखिये।

2 देव तथा शास्त्र के नामान्तर लिखिये।

3. तुम्हारे अध्यापक सच्चे गुरू है या विद्यागुरू?

4. जिस देव में सत्रह दोष तो नही है केवल एक दोष है वह सच्चा देव है या नही है?

5 अस्त्र शस्त्र रखने वाला देव, आगम विरूद्ध कथन करने वाला शास्त्र, रूपया और वस्त्रादिक रखने वाला साधु, देव, शास्त्र, गुरू है या नही?

6. जो हितोपदेशी नहीं है वह देव हो सकता है या नही?

7. अरिहन्त भगवान सर्वज्ञ है या नही?

8. तीर्थकर सर्वज्ञ और भगवान हैं या नहीं?

9. जो केवल भूत एवं वर्तमान को जानते हैं वे सर्वज्ञ हैं या नहीं?

10. फिल्मी उपन्यास और कहानिया ये शास्त्र हैं या नहीं?

पाठ 3

पाप

खोटे भाव/विचार या खोटे कार्य करने को पाप कहते हैं।

पाप पांच होते हैं।

(1) हिंसा (2) झूठ (3) चोरी (4) कुशील (5) परिग्रह

हिंसा - किसी जीव को मारना , सताना, उसका दिल दु:खाना, खोटे वचन बोलना आदि को हिंसा कहते हैं। जैसे किसी पक्षी/जानवर को पिंजड़े या कमरे में बन्द कर, उसकी स्वतंत्रता छीनना या भूखा प्यासा रखना, सताना या दु:ख हिंसा देना है। हिंसा के दो भेद हैं (1) द्रव्यहिंसा और (2) भावहिंसा

झूठ - जिस बात या जिस चीज को जैसा देखा या सुना हो वैसा न कहना झूठ है तथा जिन वचनों से धर्म धर्मात्मा या किसी भी प्राणी का घात हो जावे ऐसे सत्य वचन भी झूठ कहलाते हैं। इस पाप से लोग झूठ दगाबाज कहलाते हैं।

चोरी - बिना दिये किसी की गिरी, पड़ी, रखी या भूली हुयी वस्तु को ग्रहण करना अथवा उठाकर किसी को दे देना चोरी है। इस पाप को करने वाले लोग चोर कहलाते हैं।

कुशील - परायी स्त्री या पर पुरूष के साथ रमन को कुशील कहते हैं। इस पाप को करने वाले व्यभिचारी, जार, बदमाश कहलाते हैं और लोक में बुरी नजर से देखे जाते हैं।

परिग्रह - जमीन, मकान, धन, धान्य, गाय, बैल, इत्यादि से मोह रखना इन्ही संसारी चीजों के इकट्ठे करने में लालसा रखना सो परिग्रह है इस पाप को करने वाले लोभी, बहुधंधी, कंजूस कहलातें हैं।

प्रश्नावली

1. पाप किसे कहते हैं?
2. पाप कितने हैं? नाम गिनाइये।
3. द्रव्य हिंसा और भावहिंसा में क्या अन्तर है?
4. झूठ बोलने वाले को क्या कहते हैं?
5. निम्नलिखित शब्दों की परिभाषा लिखिए?

   (अ) कुशील (ब) चोरी (स) परिग्रह

पाठ 4

अभक्ष्य

जो पदार्थ खाने (भक्षण करने) योग्य नहीं होता उसे अभक्ष्य कहते हैं।

अभक्ष्य के भेद

त्रसहिंसाकारक, बहुस्थावर हिंसाकारक, प्रमादकार, अनिष्ट और अनुपसेव्य ये पांच अभक्ष्य हैं।

त्रसहिंसाकारक अभक्ष्य

जिस पदार्थ के खाने से त्रसजीवों का घात होता है। उसे त्रस हिंसाकारक अभक्ष्य कहते हैं। जैसे बड़, पीपल, ऊमर, बैर, कमल की डंडी के समान पोले पदार्थ, घुनाअन्न, अमर्यादित वस्तु, मुरब्बा और द्विदल आदि के खाने से त्रसजीवों का घात होता है।

बहुस्थावर हिंसाकारक अभक्ष्य

जिस पदार्थ के खाने से अनन्तस्थावर जीवों का घात होता है उसे बहुस्थावर हिंसाकारक अभक्ष्य कहते हैं। जैसे- आलू, घुईया (अरबी), मूली गाजर, प्याज, लहसुन, अदरक, शकरकन्द, सूरण, तुच्छफल और तरबूज आदि के खाने मे अनन्तस्थावर जीवों का घात होता है।

प्रमादकारक अभक्ष्य

जिस पदार्थ के खाने से प्रमाद, आलस अथवा बुरी भावनायें आती है उसे प्रमादकारक कहते हैं। जैसे-शराब, भंग, चरस, कोकीन, बीड़ी, सिगरेट, गुटका, तम्बाखू, गांजा और अफीम आदि नशीली चीजों के खाने से प्रमाद बढ़ता है।

अनिष्टकारक अभक्ष्य

जो पदार्थ भक्ष्य होने पर भी पथ्य (हितकर) नहीं होता उसे अनिष्टकारक अभक्ष्य कहते हैं। जैसे खांसी के रोग वाले को मिठाई खाना, बुखार वाले को हलुवा खाना और जुकाम वाले को ठण्डी वस्तु खाना अनिष्ट है, हितकर नहीं।

अनुपसेव्य अभक्ष्य

जिस पदार्थ का खाना अपने समाज तथा धर्म वाले बुरा समझते हैं, उसे अनुपसेव्य अभक्ष्य कहते हैं। जैसे- शंख, हाथीदांत, कस्तूरी, शहद, मद्य गोरोचना आदि पदार्थ तथा प्रकृति विरूद्ध भोजन अनुपसेव्य हैं।

अभक्ष्यों के नाम

ओला, घोलवड़ा, निशि, भोजन, बहुबीजा, बैगन, संधान
बड़ पीपल, उमर, कठूमर, पाकर फल या होय अजान॥
कन्दमूल, मिट्टी विष आमिष, मधु मक्खन अरू मदिरापान।
फल अतितुच्छ तुषार चलितरस, ये बाईस अभक्ष्य बखान॥

शब्दार्थ

घोलबड़ा = दहीबड़ा, तुषार = बर्फ

सन्धान = अचार

कठूमर = कटहल

आमिष = मांस

कन्दमूल = जमीन के अन्दर पैदा होने वाली वस्तुयें -जैसे-आलू, अदरक आदि।

तुच्छफल = जिस फल में बीज नहीं आ पाये और जो बहुत छोटा होता है परन्तु बढ़ सकता है।

बहुबीजक = जिस फल में बीजों के रहने के लिये अलग-अलग स्थान नहीं होता अर्थात जिसमें दल के भीतर बीजों का घर नहीं होता। जैसे-बैंगन आदि।

अजान फल = कोई फल या शाक वगैरह जिसे हम पहिचानते नहीं है।

चलितरस = जिसका स्वाद बिगड़ जाता है।

द्विदल - दलने पर जिनके प्राय: बराबर-बराबर दो टुकड़े होते हैं। ऐसे उड़द मूंग, चना आदि को कच्चे अथवा पके दूध दही और छांछ में मिला कर खाना। द्विदल में मुख की लार मिलते ही त्रस जीव पैदा हो जाते हैं।

प्रश्नावली

1. अभक्ष्य किसे कहते है?
2. अनुपसेव्य अभक्ष्य किसे कहते हैं और कौन-कौन से हैं?
3. त्रसहिंसाकारक अभक्ष्य और बहुस्थावर हिंसाकारक अभक्ष्य में अन्तर लिखिए?
4. अभक्ष्यों के प्रकार छांटिये?

   बहुबीजक, द्विदल, तुच्छफल, चलितरस।
5. इनमें से कौन-कौन अभक्ष्य हैं?

   बैंगन, पेड़ा, पालक, बादाम, गाजर, प्याज, आमर्यादित मक्खन।

पाठ 5

श्रावक के अष्टमूलगुण

जो गुणों में मूल हैं उन्हें मूलगुण कहते हैं जैसे मूल (जड़) के बिना वृक्ष नहीं हो सकता है, वैसे ही इन आठ मूलगुणों के बिना श्रावक नही कहला सकता है और आत्मसाधना के लिए प्रथमत: श्रावक होना अनिवार्य है।

श्रावक के मूलगुण निम्न हैं-

1. मद्य (शराब) त्याग
2. मांस भक्षण त्याग
3. मधु (शहद) त्याग
4. पंच उदुम्बर फलों का त्याग
5. रात्रि भोजनत्याग
6. जल छानकर पीना
7. नित्यदेव दर्शन करना
8. जीवों पर दया करना।

1.मद्यत्याग : शराब आदि मादक वस्तुओं के सेवन करने का त्याग करना मद्य त्याग है। यह पदार्थ को सड़ागलाकर बनायी जाती है। अत: इसके सेवन से लाखों जीवों का घात होता है इसके सेवन से व्यक्ति का विवेक समाप्त हो जाता है और वह पागल सा हो जाता है अत: इसका त्याग करना अति आवशयक है।

2.मांस भक्षणत्याग : मांस की उत्पत्ति त्रस जीवों के घात से होती है तथा मांस में निरन्तर त्रस जीवों की उत्पत्ति भी होती रहती है अत: मांस खाने वाला असंख्य त्रस जीवों का घात करता है उसके परिणाम क्रूर हो जाते है वह कई प्रकार की बीमारियों से ग्रस्त हो जाता है अत: श्रावक को मांस का सेवन कदापि नहीं करना चाहिए। अण्डा भी त्रस जीवों का शरीर है अत: उसे भी नहीं खाना चाहिये।

3.मधु (शहद) त्याग : मधु असंख्य जीवों के घात से उत्पन्न होता है। यह मधु-मक्खियों का मल है तथा अपवित्र पदार्थ हैं इसकी एक बिन्दु मात्र भी खाने से सात गाँव जलाने का पाप लगता है। अत: इसे कदापि नहीं खाना चाहिये।

4.पंच उदम्बर फलों का त्याग : बड़ पीपल, ऊमर पांच जाति के फलों को उदुम्बर फल कहते हैं इनके मध्य में अनेक सूक्ष्म-स्थूल त्रस जीव पाये जाते हैं जिनके खाने से अगणित त्रस जीवों का घात होता है अत: इन सब का त्याग आवश्यक है।

5.रात्रि भोजन त्याग: सूर्य अस्त होते ही अनेक त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं और वे भोज्य पदार्थ पर बैठते हैं रात्रि में भोजन करने पर भोजन के साथ अनेक जीवों का भक्षण हो जाता है इसलिए प्रथमत: जीव हिंसा होती है दूसरा मांस भक्षण हो जाने का दोष लगता है रात्रि में भोजन करके सो जाने पर पाचन क्रिया खराब हो जाती है जिससे कि कई प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं अत: स्वास्थ्य की दृष्टि से भी रात्रि भोजन का त्याग अनिवार्य है। क्योंकि रात्रि में भोजन करते समय सूर्य की अल्ट्रावायलेट किरणों का अभाव रहता है और हमें पूर्ण रूपसे विटामिन डी नहीं मिल पाता है।

6.जल छानकर पीना : पानी के एक बिन्दु में असंख्यात जीव होते हैं ऐसा जैनाचार्यो ने बताया है बिना छने पानी से उन जीवों का घात होता है और स्वास्थ्य भी बिगड़ता है वैज्ञानिक लोगों ने भी बिना छने पानी की एक बूंद में 36450 जीव बताये हैं। इसलिए सदा ही पानी छानकर पीना चाहिये।

मोटे कपड़े का दोहरा छन्ना होना चाहिए छना हुआ पानी 48 मिनिट तक जीव रहित रहता है पुन: उसमे त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं अत: उसे फिर से छानना चाहिये। छने हुए पानी में लौंग इलायची आदि ड़ाल देने से पानी प्रासुक हो जाता है उसकी मर्यादा 6 घण्टें की है गर्म किए हुऐ जल की मर्यादा 24 घण्टें तक की होती है।

7.नित्य-देवदर्शन करना : देवदर्शन करने से हमारे भाव/विचार अच्छे बनते हैं तथा पाप कर्म नष्ट होकर सुख शांति प्राप्त होती है मंदिर में आत्मा की चर्चा होती

है धर्म ज्ञान की वृद्धि होती है जिनेन्द्र भगवान के दर्शन की तरह यदि हम अपनी आत्मा के दर्शन करें तो भगवान बन सकते हैं।

8.जीवों पर दया करना : किसी प्राणी को मन-वचन-काय से कष्ट नहीं देना चाहिये एवं उसे कोई कष्ट हो तो उसको दूर करने को दया कहते हैं। अत: सभी जीवों के लिए हमें हमेशा मंगल की भावना करनी चाहिये।

प्रश्नावली

1. श्रावक किसे कहते हैं?
2. श्रावक होना क्यों अनिवार्य है?
3. श्रावक के कितने मूलगुण होते हैं? नाम गिनाइयें।
4. उदुम्बर फल कितने हैं?
5. मद्य सेवन से क्या हानि है?
6. अनछने जल में वैज्ञानिकों ने कितने जीव गिनाये हैं?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :

1. रात्रि में भोजन करने से क्या हानियाँ हैं?
2. छने पानी की कितनी-कितनी मर्यादा हैं ?
3. नित्यदेव दर्शन से क्या लाभ है?

पाठ 6

कर्म

कर्म का लक्षण

जो आत्मा का असली स्वभाव प्रकट नहीं होने देता उसे कर्म कहते हैं।

जैसे बहुत सी धूल या मिट्टी उड़कर सूर्य के प्रकाश को ढक देती है, उसी प्रकार लोक में सब जगह भरे हुये जो पुद्गल परमाणु रागद्वेष आदि के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों के साथ मिलकर आत्मा का स्वभाव ढक देते हैं, उन पुद्गल परमाणुओं को कर्म कहते हैं।

रागद्वेष के निमित्त से उन कर्मों में सुख-दुख आदि देने की शक्ति भी हो जाती है।

कर्म के भेद

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ये आठ कर्म है।

इनमें से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तरायकर्म घातिया तथा शेष कर्म को अघातिया कहते हैं।

ज्ञानावरण कर्म का लक्षण

जो कर्म आत्मा के ज्ञानगुण को ढकता है (प्रकट नहीं होने देता) उसे ज्ञानावरण कर्म कहते हैं।

ज्ञानावरण कर्म का दृष्टांत

यदि किसी मूर्ति पर परदा पड़ा हो तो जिस तरह उसका रूप नहीं दिखता उसी प्रकार ज्ञानावरणकर्म आत्मा के ज्ञान को ढक देता है, प्रकट नहीं होने देता ।

जैसे-सुरेश अपना पाठ खूब याद करता है, परन्तु उसे याद नहीं होता, इसमें सुरेश के ज्ञानावरण कर्म का उदय समझना चाहिये।

ज्ञानावरण कर्म के बन्ध के कारण

ज्ञान के साधनों में विघ्न डालना, पुस्तक फाड़ देना, छिपा देना, किसी को नहीं बताना, अपने ज्ञान का गर्व करना, जिनवाणी में संशय करना, अर्थ का अनर्थ करना, गुरू की निन्दा करना, झूठा उपदेश देना आदि कार्यो से ज्ञानावरणकर्म का बन्ध होता है। इनसे उल्टे कार्य करने से ज्ञान का विकास होता है।

दर्शनावरण कर्म का लक्षण

जो कर्म आत्मा के दर्शन गुण को ढकता है (प्रकट नहीं होने देता) उसे दर्शनावरण कर्म कहते हैं।

दर्शनावरण कर्म का दृष्टान्त

जिस प्रकार कोई पहरेदार राजा के दर्शन नहीं होने देता, उसी प्रकार दर्शनावरण आत्मा को पदार्थों का दर्शन नहीं होने देता। जैसे-रमेश मन्दिर के दर्शन के लिये गया, किन्तु ताला लगा पाया, इसमें रमेश के दर्शनावरण कर्म का उदय समझना चाहिये।

दर्शनावरणकर्म के बन्ध के कारण

जिनदर्शन में विघ्न डालना, किसी की आंख फोड़ना, दिन में शयन करना, मुनियों को देख घृणा करना, इन्द्रियों को छेदन करना, अपनी दृष्टि का गर्व करना इत्यादि कार्यो से दर्शनावरण कर्म का बन्ध होता है।

वेदनीय कर्म का लक्षण

जो आत्मा को सुख-दु:ख देता है और उसके अव्याबाध (बाधा का अभावरूप) गुण का घात करता है उसे वेदनीयकर्म कहते हैं।

वेदनीयकर्म का दृष्टान्त

जिस प्रकार शहद-लपेटी तलवार को धार चांटने से सुख दुख दोनों होते हैं। अर्थात् शहद मीठा लगने से सुख होता है और तलवार द्वारा जीभ कट जाने से दु:ख होता है, वैसे ही वेदनीयकर्म सुख-दु:ख दोनों देता है।

वेदनीयकर्म के बन्धन के कारण व भेद

अपने व दूसरे के विषय में दु:ख करना, शोक करना पश्चाताप करना, रोना, मारना, पशुवध करना, बलि चढ़ाना आदि कार्यों से आसातावेदनीय कर्म का बन्ध होता है।

दयाकरना, दानकरना, संयमपालना, लोभ न करना, वात्सल्य रखना, वैय्यावृत्ति करना, व्रत पालन करना, प्रभावना करना आदि कार्यों से सातावेदनीयकर्म का बन्ध होता है।

मोहनीय कर्म का दृष्टान्त

जो कर्म आत्मा के सम्यक्त्व और चारित्र गुण का घात करता है अथवा जिसके उदय से यह जीव स्वभाव को भूलकर अपने से पर वस्तुओं में लुभा जाता है उसे मोहनीयकर्म कहते हैं।

जिस प्रकार शराब प्राणी को भुला देती है, उसी प्रकार मोहनीयकर्म आत्मा को मोहित कर देता है। इस कर्म के निमित्त से प्राणी परपदार्थो में इष्ट अनिष्ट की कल्पना कर इष्ट और अनिष्ट रूप आचरण करने लगता है।

क्रोध, मान, माया, लोभ आदि मोहनीय कर्म के उदय से ही होते हैं। जैसे- प्रकाश ने क्रोध में आकर जिनेश को मार दिया, विजय ने लोभ में आकर राजकुमार को लूट लिया। इसमें प्रकाश और विजय के मोहनीय कर्म का उदय समझना चाहिये।

मोहनीयकर्म के बन्ध के कारण

सच्चे देव, शास्त्र, गुरू, और धर्म में दोष लगाना, उनके स्वरूप को बदलना, मिथ्या देव, शास्त्र, गुरू की प्रशंसा या सेवा करना, आगम की मर्यादा का उल्लंघन करना और क्रोधादि कषायें करना इत्यादि कार्यों से मोहनीय कर्म का बन्ध होता है।

आयुकर्म का लक्षण

जो कर्म आत्मा को नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव में से किसी एक के शरीर में रोक रखता है अथवा जिस कर्म के उदय से जीव को किसी पर्याय में किसी निश्चय (नियत) समय तक रहना पड़ता है, उसे आयुकर्म कहते हैं।

आयुकर्म का दृष्टान्त

जिस प्रकार सांकल में बंधा हुआ या काठ में फसाया हुआ मनुष्य उसके न हटने तक दूसरी जगह नहीं जा सकता उसी प्रकार आयुकर्म भी प्राणी को मनुष्य आदि के शरीर में रोके रखता है। जब तक एक शरीर की आयु पूरी नहीं हो जाती तब तक प्राणी दूसरे शरीर में नहीं जा सकता।

जैसे हमारा जीव मनुष्य शरीर में रूका हुआ है और गाय का जीव तिर्यंच के शरीर में रूका हुआ है। इसमें हमारे और गाय के क्रम से मनुष्य और तिर्यंच आयुकर्म का उदय समझना चाहिये।

आयुकर्म के बन्धन के कारण

बहुत हिंसा करना, बहुत आरम्भ करना, बहुत परिग्रह रखना आदि से नरकायु का बन्ध होता है। थोड़ा आरम्भ और थोड़ा परिग्रह रखने आदि से मनुष्यायु का बन्ध होता है। सम्यक्त्व प्राप्ति, व्रतपालन करना , शान्तिपूर्वक दु:ख सहना आदि से देव आयु का बन्ध होता है।

नामकर्म का लक्षण

जो कर्म प्राणियों को तरह-तरह के शरीर आंगोपांग, आकार और रूप-रूपान्तर स्वरूप परिणमाता (करता या बदलता) है उसे नामकर्म कहते हैं।

नामकर्म का दृष्टान्त

जिस प्रकार कोई चित्रकार अनेक प्रकार के चित्र बनाता है, कोई मनुष्य का, कोई बैल का किसी का हाथ लम्बा आदि। इसी प्रकार नामकर्म इस प्राणी को कभी घोड़ा कभी कुबड़ा, कभी गोरा आदि अनेक रूप परिणमाता है। हमारे आंख, कान, नाक, शरीर आदि सब नामकर्म के उदय से ही बने हैं।

नामकर्म के बन्ध के कारण

मन, वचन काय को सरल रखना, धर्मात्मा को देख खुश होना आंगोपांग का छेद करना, षोडशकारण भावना भाना आदि कार्यों से शुभ नामकर्म का बन्ध होता है।

त्रियोग को कुटिल रखना, दूसरे को देख कर हंसना, धर्मात्माओं के साथ विसंवाद करना, किसी की नकल करना, आपस में लड़ना और किसी का बुरा सोचना आदि कार्यों से अशुभ नामकर्म का बन्ध होता है।

गोत्रकर्म का लक्षण

जिस कर्म के उदय से प्राणी ऊंच या नीच कुल को प्राप्त होता है, उसे गोत्रकर्म कहते हैं।

गोत्रकर्म का दृष्टान्त

जिस प्रकार कुम्हार छोटे या बड़े बर्तन बनाता है, उसी प्रकार गोत्रकर्म इस कर्म को ऊंचा या नीचा कुल (गोत्र, घराना) प्राप्त कराता है। उच्चगोत्र के उदय से लोकमान्य कुल की प्राप्ति होती है तथा नीचा गोत्रकर्म के उदय से लोक निन्द्य कुल की प्राप्ति होती है।

गोत्रकर्म में बन्ध के कारण

दूसरे की निन्दा करना, अपनी प्रशंसा करना दूसरे के गुणों को ढौंकना, अपने गैरमौजूद गुणों को प्रकट करना तथा अष्टमद आदि कार्यों से नीच गोत्र कर्म का बन्ध होता है।

दूसरे की प्रशंसा करना अपनी निन्दा करना, दूसरे के दोषों को ढांकना, अपने दोषों को प्रकट करना आदि कार्यों से उच्चगोत्र कर्म का बन्ध होता है।

अन्तरायकर्म का लक्षण

जो कर्म दान , लाभ भोग, उपभोग या शक्ति में विघ्न डालता है उसे अन्तरायकर्म कहते हैं।

अन्तरायकर्म का दृष्टान्त

जिस प्रकार किसी सेठ ने एक पाठशाला को दस हजार रु देने की आज्ञा दी, किन्तु मुनीम कुछ गड़बड़ करके वह रूपया न देकर विघ्न कर देता है, उसी प्रकार अन्तराय कर्म कार्यो में विघ्न किया करता है। जैसे-अजित कुमार लड्डू खा रहा था, कुत्ता आकर लड्डू छीन ले गया, तो अजित के अन्तरायकर्म का उदय समझना चाहिये।

अन्तरायकर्म के बन्ध के कारण

दान देते को रोक देना, आश्रितों को धर्मसाधन नहीं करने देना, दूसरे की भोग वस्तु को बिगाड़ देना, किसी को हानि पहुंचाना, किसी के सामर्थ्य को बिगाड़ना आदि कार्यों से अन्तरायकर्म का बन्ध होता है।

सबसे खराबकर्म

मोहनीयकर्म से ही दूसरे कर्म का निर्माण होता है और इसके नष्ट हुये बिना दूसरे कर्मों का नाश भी नहीं होता। इसकी स्थिति भी सभी कर्मों से अधिक है। इसलिये मोहनीयकर्म ही सबसे खराब कर्म है।

कर्मरहित जीव

अरिहन्त भगवान के चार घातिया कर्म नहीं होते, सिद्ध परमेष्ठी के आठों कर्म नहीं होते। आयु कर्म का बन्ध एक प्राणी के एक पर्याय मे एक बार ही होता है।

प्रश्नावली

1. कर्म किसे कहते हैं? इनमें फल देने की शक्ति कैसे पैदा होती है।
2. सबसे बुरा कर्म कौनसा है और तुम्हारे पास इस समय कितने कर्म हैं?

3. बताओ इनके किस कर्म का उदय है -

(अ) अजित कुमार लड्डू खा रहा था, कुत्ता आकर लड्डू छीन ले गया।

(ब) सुरेश अपना पाठ खूब याद करता है परन्तु उसे याद नही होता।

(स) रमेश मन्दिर गया परन्तु ताला लगा पाया, अत: दर्शन नहीं कर सका।

(द) देवदत्त बहुत सुन्दर है और अजना का गला सुरीला है।

(य) मोहन दिन भर सोता रहता है।

(र) सोहन सदा रोगी और दु:खी रहता है।

4. बताओ इनके किस किस कर्म का बन्ध हुआ है।

(क) मोहन बड़ा मानी है क्योंकि गुरू का अपमान किया।

(ख) मदन ने सुरेश की पुस्तक फाड़ दी।

(ग) सुरेश फैल हो गया, अत: बहुत रोया।

(घ) अखिलेश ने सुरेश की चुगली की।

(ङ) सुरेश ने साथियों के साथ मिलकर देवदत्त की दुकान लूट ली।

5. बताओ निम्न लिखित वाक्यों में क्या अशुद्धि है?

(क) गोविन्द के अन्तराय कर्म का उदय है इस कारण जन्म से अन्धा है।

(ख) मेरा शरीर सुन्दर और सुडौल उच्च गोत्र कर्म के उदय से है।

(ग) श्याम दिन भर सोता रहता है क्योंकि आयु कर्म का उदय है।

6. घोड़ा, वृक्ष, बच्चा, बूढ़ा, कुर्सी के कितने कर्म हैं?

7. बदनामी, प्रशंसा, कंजूसी, क्रोध किस कर्म के उदय से होता है?

8. हम सभी के नाक, कान, हाथ किस कर्म के निमित्त से बनते है।

पाठ 7

तत्त्व एवं पदार्थ

तत्त्व का लक्षण :

जिनके जानने या श्रद्धान करने से हमें अपने आत्मा के सच्चे हित का ज्ञान हो सके और हम अपनी आत्मा को पवित्र कर सके ऐसे वस्तु के स्वभाव को तत्त्व कहते हैं।

तत्त्वों के भेद :

जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं, पुण्य और पाप मिला देने से नौ पदार्थ हो जाते हैं।

जीव : जिसमें चेतना पायी जाती है उस जीव कहते हैं।

अजीव : जिसमें चेतना नहीं पायी जाती है उसे अजीव कहते हैं।

आस्रव : रागद्वेष आदि भावों के द्वारा आत्मा की ओर आने वाले कर्मों के द्वार को आस्रव कहते हैं।

बन्ध : रागद्वेष आदि भावों के द्वारा आये हुए कर्मों का आत्मा के साथ दूध और जल के समान मिलकर एकमेक हो जाना बन्ध कहलाता है।

संवर : आस्रव का न होना अर्थात् आते हुए कर्मों का रुकना संवर कहलाता है।

निर्जरा : आत्मा के साथ बद्धकर्मो का एकदेश (थोड़ा भाग) क्षय हो जाना निर्जरा कहलाता है।

मोक्ष : ज्ञानावरणादि आठों कर्मों का क्षय होकर आत्मा का सर्वथा शुद्ध हो जाना मोक्ष कहलाता है।

सात तत्त्वों का उदाहरण :

जैसे एक नाव है वह अजीव है, उसमें बैठे व्यक्ति जीव तत्त्व हैं। नाव में एक छेद है। अत: उस छेद से पानी अन्दर नाव में आ रहा है। यह जो पानी आने का द्वार है यही आस्रव है और पानी का नाव मे एकत्रित होना बन्ध है अब नाविक ने नाव डूब जाने के भय से पानी को रोकने के लिए छिद्र को बन्द कर दिया वही छेद का बन्द हो जाना संवर है। और फिर अन्दर भरा हुआ पानी धीरे धीरे निकला जा रहा है यही निर्जरा है और जब सारा पानी निकाल कर नाव पूर्ण हल्की हो गयी है यही मोक्ष है।

शरीर भी एक नाव है यह अजीव तत्त्व है आत्मा जीव तत्त्व है शुभ अशुभ -मन वचन काय की चंचलता को रोकना संवर है तप के द्वारा कर्मों का आत्मा से एक देश छूट जाना निर्जरा है और कर्मो से आत्मा का पूर्ण रूप से अलग हो जाना यही मोक्ष है।

पदार्थ का लक्षण और भेद :

जिस में तत्त्व पाया जाता है उसे पदार्थ कहते हैं सात तत्त्व और पुण्य तथा पाप मिलकर नौ पदार्थ होते हैं।

पुण्य : जिससे प्राणी को इष्ट वस्तु की प्राप्ति तथा लाभदायक सामग्री प्राप्त होती है उसे पुण्य कहते हैं जैसे- सुपुत्र की प्राप्ति व्यापार में लाभ, और उच्चपद की प्राप्ति ये पुण्य के उदय से होते हैं।

धर्म पालन करना , पूजनकरना , दानदेना, शिक्षाप्रचार परोपकार आदि पुण्य संचय के कारण हैं।

पाप : जिससे प्राणी को अनिष्ट वस्तु और दुःख दायक सामग्री प्राप्त होती है उसे पाप कहते हैं जैसे पुत्र मर जाना , चोरी हो जाना, रोग हो जाना आदि पाप के उदय से होते हैं।

हिंसा करना, झूठ बोलना चोरी करना परिग्रह रखना, परनिन्दा करना किसी का बुरा विचारना जुआ खेलना आदि खराब कार्य पाप संचय के कारण हैं।

प्रश्नावली

1. तत्त्व किसे कहते हैं?
2. तत्त्वों के कितने भेद हैं? नाम लिखों।
3. जीव और अजीव तत्त्व में क्या अन्तर है?
4. आस्रव और संवर को उदाहरण सहित समझायिये?
5. निर्जरा और मोक्ष में क्या अन्तर है?
6. पाप संचय कैसे होता है?
7. निम्न की परिभाषा लिखो?

   (अ) बन्ध (ब) पदार्थ (स) पुण्य

भगवान-पार्श्वनाथ

भगवान महावीर से पूर्व तेइसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ का जन्म आज से करीब तीन हजार वर्ष पहिले इक्ष्वाकुवंश के काश्यप गोत्रीय वाराणसी (बनारस) नरेश अश्वसेन के यहां उनकी विदुषी पत्नी वामादेवी के उदर से पौष कृष्णा एकादशी के दिन पार्श्वकुमार का जन्म हुआ था पार्श्वकुमार जन्म से ही प्रतिभाशाली और चमत्कृत बुद्धिनिधान मति - श्रुत एवं अवधिज्ञान के धारक थे। वे अनेक शुभलक्षणों के धनी अतुल्य बल से युक्त आकर्षक व्यक्तित्व वाले बालक थे।

एक दिन प्रात: काल वे अपने साथियों के साथ घूमने जा रहे थे। रास्ते में वे देखते हैं कि उनके नाना साधु वेश में पंचाग्नि तप तप रहे हैं। जलती हुई लकड़ी के बीच एक नाग-नागिनी का जोड़ा था वह भी जल रहा था। पार्श्वकुमार ने अपने दिव्यज्ञान (अवधिज्ञान) से यह सब जान लिया और उनको इस प्रकार के काम करने से मना किया पर जब तक उस लकड़ी को काटकर नहीं देख लिया गया तब तक किसी ने उनका विश्वास नहीं किया। लकड़ी फाड़ते ही उसमें से अधजले नाग नागिन निकले। पार्श्वकुमार ने उन नाग-नागिन को णमोकार मंत्र सुनाया और वे मंद कषाय से मरकर धरणेन्द्र और पदमावती हुए।

युवा होने पर उनके माता पिता ने बहुत ही प्रयत्न किये पर उन्हें विवाह करने को राजी न कर सके। वे बाल ब्रह्मचारी ही रहे और इस हृदयविदारक घटना से उनका कोमल हृदय वैराग्यमय हो गया इसी बीच एक दिन अयोध्या से एक दूत राजा अश्वसेन के समय में आया पार्श्वकुमार ने अयोध्या का हाल पूछा तो उसने ऋषभ आदि तीर्थकरों का चरित्र सुनाया पार्श्वकुमार को ऋषभ आदि का चरित्र सुनने से वैराग्य हो गया और उन्होनें 30 वर्ष की अवस्था में ही पौष कृष्णा एकादशी के दिन दिगम्बर दीक्षा ले ली।

अखण्ड मौन व्रत धारणकर आत्मसाधना में लीन हो गये एक बार वे अहिक्षेत्र वन में ध्यानस्थ थे ऊपर से कमठ उनका पूर्व जन्म का वैरी संवर नामक देव जा रहा था। उन्हें देखकर उसका वैर जागृत हो गया और उसने मुनिराज पार्श्वनाथ पर घोर उपसर्ग किया पानी बरसाया, ओले बरसाये यहां तक कि घोर तूफान मचाया और पत्थर तक बरसाये पर पार्श्वनाथ आत्म साधना से डिगे नहीं और उन्हें उसीसमय चैत्र कृष्ण एकादशी के दिन केवलज्ञान की प्राप्ति हुयी यह देखकर देव पछताया और चरणों में लेट गया।

उस समय धरणेन्द्र और पद्मावती को उनके उपसर्ग को दूर करने का विकल्प आया और उन युगल नाना के जीवों मे से धरणेन्द्र ने सर्प के रूप मे छाया की और पदमावती ने मस्तक पर उठा लिया। उसके बाद वे करीब सत्तर वर्ष तक सारे भारत वर्ष में समवशरण सहित विहार करते रहे एवं दिव्यध्वनि द्वारा भव्य जीवों को तत्त्वों का उपदेश देते रहे ।

इस प्रकार वे उपदेश देते हुए अन्त में सौ वर्ष की आयु में श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन बिहार प्रान्त के हजारीबाग जिले के सम्मेद शिखर पर्वत से मोक्ष को पधारे। इसी कारण इस पवर्त को आज पार्श्वनाथ हिल (पहाड़) कहा जाता है।

प्रश्नावली

1. पार्श्वकुमार का जन्म कब और कहां हुआ था?
2. पार्श्वकुमार के माता पिता का नाम तथा गोत्र का नाम बताओ?
3. पार्श्वकुमार को जन्म से ही कितने ज्ञान थे नाम लिखो?
4. धरणेन्द्र ओर पदमावती कौन थे?
5. पार्श्वनाथ पर किसने और क्या उपसर्ग किया?
6. पार्श्वनाथ को केवल ज्ञान कब हुआ?
7. भगवान पार्श्वनाथ को निर्वाण कब और कहां से प्राप्त हुआ?

जिनवाणी स्तुति

मिथ्यातम नाशवे को, ज्ञान के प्रकाशवे को।
आपा पर भासवे को , भानु सी बखानी है॥
छहों द्रव्य जानवे को बन्ध विधि भानवे को।
स्व पर पिछानवे को, परम प्रमानी है॥
अनुभव बतायवे को जीव के जतायवे को।
काहू न सतायवे को, भव्य उर आनी है॥
जहां उहां तारवे को पार के उतारवे को।
सुख विस्तारवे को, ये ही जिनवाणी है॥

दोहा:- हे जिनवाणी भारती, तोही जपों दिन रैन।
जो तेरी शरण गहे, सो पावे सुख चैन॥
जा वाणी के ज्ञान तैं, सूझे लोका लोक।
सो वाणी मस्तक नवों , सदा देत हो ढोक॥

जिनवाणी स्तुति का भावार्थ:

हे जिनवाणी माता! तुम मिथ्यात्वरूपी अन्धकार का नाश करने के लिए तथा आत्मा और पर पदार्थों का सही ज्ञान कराने के लिए सूर्य के समान हो।

छहों द्रव्यों का स्वरूप जानने में कर्मों की बन्ध पद्धति का ज्ञान कराने में निज और पर की सच्ची पहिचान कराने में तुम्हारी प्रमाणिकता असंदिग्ध है।

अत: हे जिनवाणी, भव्य जीवों ने उनको अपने ह्रदय में धारण कर रखा है क्यों कि तुम आत्मा को दुख न हो ऐसा मार्ग बताने में समर्थ हो।

एक मात्र जिनवाणी ही संसार से पार उतारने में समर्थ है एवं सच्चे सुख का रास्ता बताने वाली है।

हे जिनवाणी माता! मैं तेरी ही आराधना सारे दिन-रात करता हूं क्योंकि जो व्यक्ति तेरी शरण में जाता है वही सच्चा अतिन्द्रिय आनन्द पाता है।

जिस वीतराग-वाणी का ज्ञान हो जाने पर सारी दुनियां को सही ज्ञान हो जाता है उस वाणी को मैं मस्तक नवाकर सदा नमस्कार करता हूं।

प्रश्नावली

1. जिनवाणी किसे कहते हैं?
2. जिनवाणी को क्यों नमस्कार करते हैं?
3. जिनवाणी को सूर्य के समान क्यों कहा गया है?
4. निम्न पंक्तियों का भावार्थ लिखिए?

   ''छहों द्रव्य जानवे को, बन्ध विधि भानवे को।

   स्व पर पिछानवे को, परम प्रमानी है॥''

   अनुभव बतायवे को, जीव के जतायवे को।

   काहू न सतायवे को, भव्य उर आनी है॥''

आदर्श गीत

अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्वसाधु सुखदाता
परमेष्ठी पंच सुखदाता

इन्द्र नरेन्द्र यक्ष सुर किन्नर, पण्डित बुधजन सारे
भवतम भंजन शीष नमावत, रक्षक तुमही हमारे
जब शुभ मनमें ध्यावे, तब शुभ आशीष पावे
हे सद्बुद्धि प्रदाता।

भव दुख बाधा हरो हमारी, तुम्हें नमावत माथा
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय जय हे
परमेष्ठी पंच सुखदाता

अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्वसाधु सुखदाता
परमेष्ठी पंच सुखदाता

चारों गति में भ्रमत फिरे हैं, कष्ट अनेक उठाये
ज्ञान नयन जब खुले हमारे, तब तब दर्शन पाये
सुख की ये आस भगाये, हम सब तुम ढिग जाये
जहां मिले सुख साता

नाथ तुम्हारे दर्शन से तो, मुक्ति पद मिल जाता
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय हे
परमेष्ठी पंच सुखदाता

अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्वसाधु सुखदाता
परमेष्ठी पंच सुखदाता

मेरी भावना

पं. जुगुल किशोर मुख्तार 'युगवीर'

जिसने राग -द्वेष कामादिक, जीते सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्षमार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया॥
बुद्ध, वीर, जिन हरि हर ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति भाव से प्रेरित हो यह, चित्त उसी में लीन रहो॥1॥

विषयों की आशा नहीं जिनके, साम्य भाव धन रखते हैं।
निज पर के हित साधन में जो निशदिन तत्पर रहते हैं॥
स्वार्थ-त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुःख समूह को हरते हैं॥2॥

रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उनहीं जैसी चर्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे॥
नहीं सताऊं किसी जीव को, झूठ कभी नहीं कहा करूँ।
पर-धन वनिता पर न लुभाऊँ, सन्तोषामृत पिया करूँ॥3॥

अहंकार का भाव न रखूं, नहीं किसी पर क्रोध करूँ।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्याभाव धरूँ॥
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूँ।
बने जहां तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूँ॥4॥

मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों पर नित्य रहे।
दीन दुखी जीवों पर मेरे, उर से करूणास्रोत बहे॥
दुर्जन क्रूर कुमार्गरतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्यभाव रखूँ मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे॥5॥

गुणीजनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहां तक उनकी सेवा , करके यह मन सुख पावे।
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे ॥6॥

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखों वर्षों तक जीऊँ, या मृत्यु आज ही आ जावे।
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे ।
तो भी न्याय मार्ग से मेरा, कभी न पद डिगने पावे ॥7॥

होकर सुख में मग्न न फूलै, दु:ख में कभी न घबरावै।
पर्वत, नदी, शमशान भयानक, अटवी से नहीं भय खावै॥
रहे अडोल अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे।
इष्ट वियोग अनिष्ट योग में सहनशीलता दिखलावे॥ 8॥

सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे।
वैर भाव अभिमान छोड़, जग नित्य नये मंगल गावे॥
घर -घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावें।
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना, मनुज जन्म फल सब पावें ॥9॥

ईति-भीति व्यापे नहीं जग में,वृष्टि समय पर हुआ करे।
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे॥
रोग मरी दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शांति से जिया करे।
परम अहिंसा-धर्म जगत में, फैल सर्व हित किया करे ॥10॥

फैले प्रेम परस्पर जग में , मोह दूर ही रहा करे।
अप्रिय कटुक कठोर शब्द नहीं कोई मुख से कहा करे॥
बन कर सब 'युगवीर' हृदय से, धर्मोन्नति रत रहा करें।
वस्तुस्वरूप विचार खुशी से, सब दु:ख संकट सहा करें ॥11॥

अभ्यास

शब्दार्थ

राग	प्रेम
द्वेष	बैर
कामादिक	इच्छादिक
निस्पृह	नि:स्वार्थ

वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट के महत्वपूर्ण प्रकाशन

क्र.सं.	पुस्तक का नाम	मूल्य
1.	जैन तर्क शास्त्र में अनुमान विचार (न्याय)	अप्राप्त
2.	देवागम अपर नाम आप्त मीमांसा (दर्शन)	10.00
3.	युगवीर निबन्धावली भाग-1 (संस्कृति)	अप्राप्त
4.	युगवीर निबन्धावली भाग-2 (संस्कृति)	अप्राप्त
5	प्रमाणनय निक्षेप प्रकाश (सिद्धान्त)	अप्राप्त
6	लोक विजय यंत्र (ज्योतिष)	25 00
7	नयी किरण नया सवेरा (धार्मिक लघु उपन्यास)	अप्राप्त
8.	प्रमाण परीक्षा (न्याय शास्त्र)	15.00
9.	रत्नकरण्ड श्रावकाचार	अप्राप्त
10.	जैन धर्म परिचय (धर्मशाला)	5.00
11.	आरम्भिक जैन धर्म	4 00
12.	करणानुयोग प्रवेशिका	10 00
13.	द्रव्यानुयोग प्रवेशिका	5.00
14.	चरणानुयोग प्रवेशिका	8 00
15.	महावीर वाणी (सिद्धान्त सकलन)	अप्राप्त
16.	मंगलायतनम	10 00
17	ऐसे थे हमारे गुरू जी	3.00
18.	जैन दर्शन का व्यावहारिक पक्ष (अनेकान्तवाद)	2 00
19.	भगवान महावीर का जीवन वृत	2.00
20.	जैन दर्शन और प्रमाणशास्त्र परिशीलन	अप्राप्त
21.	समाधिमरणोत्साह दीपक (द्वि. स)	6.00
22.	तत्वानुशासन (ध्यान शा)	अप्राप्त
23.	प्रमेय कण्ठिका (न्याय)	5 00
24.	जैन तत्व ज्ञान मीमांसा	अप्राप्त
25.	द्वापर का देवता अरिष्टनेमि	12 00
26.	श्रावकाचार	10.00
27.	आराधनासार सटीक (हिन्दी अनुवाद सहित)	10 00
28.	सम्यक्त्व चिंतामणि	अप्राप्त
29	समन्तभद्र ग्रन्थावली	40 00
30.	पत्र परीक्षा	10.00
31.	पर्यायें क्रमबद्ध भी होती हैं और अक्रमबद्ध भी	अप्राप्त
32.	सिद्धान्त सार	4.00
33.	ज्ञान सार	4.50
34.	भाग्य और पुरूषार्थ, एक नाया अनुचिन्तन	अप्राप्त

संन्त शिरोमणि आचार्य विद्यासागर जी महाराज के गुरू आचार्य प्रवर ज्ञानसागर जी महाराज द्वारा लिखित सम्पूर्ण ग्रन्थ भी ट्रस्ट प्रकाशन के अन्तर्गत प्रकाशित हुए हैं। 24 ग्रन्थों का सेट 601/- में उपलब्ध है।